IJCRM International Journal of Contemporary Research In Multidisciplinary

Research Article

सामाजिक न्याय, समानता और समावेशिता के प्रति भारत का अद्वितीय दृष्टिकोण

रविन्द्र कुमार रीतौरिया *
शोध छात्र, राजनीति विज्ञान जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर, मध्य प्रदेश, भारत

Corresponding Author: रविन्द्र कुमार रीतौरिया *

DOI: https://doi.org/10.5281/zenodo.19666564

सारांश

भारतीय समाज और संविधान में लोकतंत्र और मानवता सर्वोपरि है, हमारे धर्म, संस्कार, संस्कृति और संविधान ने सभी व्यक्तियों के लिए कुछ न कुछ ऐसे अधिकार, कानून, प्रसंग आदि दिये हैं जिसमें सम्पूर्ण मानव जाति का कल्याण और प्रगतिशीलता का भाव झलकता है। भारतीय साहित्य में तीन बातों को प्रमुखता से स्थान दिया गया है- प्रथम धर्म, द्वितीय मानवता और तृतीय राष्ट्र की रक्षा करना ही मानव जीवन का सर्वोत्तम लक्ष्य है। मनुष्य का एक ही कत्र्तव्य है कि वह मानवतावादी दृष्टिकोण को अपनाते हुए सभी जीवों के साथ समानता का व्यवहार करें। भारतीय समाज में सामाजिक न्याय, समानता और समावेशिता एक विमर्श के रूप में प्रचलन है जिसका प्रयाग राजनीति और समाजशास्त्रीय उपयोगिताओं में समान रूप से होता है।

Manuscript Information

- **ISSN No:** 2583-7397
- **Received:** 16-03-2025
- **Accepted:** 28-04-2025
- **Published:** 30-04-2025
- **IJCRM:**4(2); 2025: 485-489
- **©2025, All Rights Reserved**
- **Plagiarism Checked:** Yes
- **Peer Review Process:** Yes

How to Cite this Article

रविन्द्र कुमार रीतौरिया. सामाजिक न्याय, समानता और समावेशिता के प्रति भारत का अद्वितीय दृष्टिकोण. Int J Contemp Res Multidiscip. 2025;4(2):485-489.

Access this Article Online

www.multiarticlesjournal.com

मुख्य शब्द: सामाजिक न्याय, समानता, अम्बेडकरवादी विचारधारा, सामाजिक- राजनीति दृष्टिकोण, सामाजिक व्यवहार, जातिवाद, वर्गवाद, संवैधानिकता

© 2025 रविन्द्र कुमार रीतौरिया. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND). https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

परिचय

भारतीय समाज को जातियों और समुदायों में बाँटा गया है, जो श्रेष्ठता और निम्नता के आधार पर समाज की विशिष्टता में बाधा और दीवार का निर्माण करता है। सामाजिक न्याय समाज या राज्य के अंदर संपत्ति, परिसंपत्ति, विशेषाधिकार और लाभ हेतु वितरण न्याय का एक विनियोग है। न्याय का सार सबकी भलाई की प्राप्ति है। सामाजिक न्याय के अंतर्गत एक न्यायसंगत और निष्पक्ष सामाजिक व्यवस्था का निर्माण होता है और समुदाय के प्रत्येक सदस्य हेतु न्याय प्रदान करता है। समाज में असमानताओं को दूर करना और समाज के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक मामलों में सभी लोगों को समान अवसर देने की बातें आदि शामिल है।

भारत के संदर्भ में सामाजिक न्याय जाति व्यवस्था के सामाजिक अन्याय का प्रतिफल है। ऐसी सामाजिक असमानता न केवल समाज अपितु भारतीय लोकतंत्र के लिए भी एक गंभीर खतरा पैदा करती है। पारम्परिक हिंदू जाति के वर्गीकरण के अंतर्गत पिछड़ा वर्ग और महिलाएँ सदियों से पीड़ित रही हैं क्योंकि उन्हें समानता एवं शिक्षा से दूर रखते हुए उन्नति के अवसरों से वंचित किया गया है। भारतीय समाज के संदर्भ में सामाजिक न्याय इस प्रकार के लोगों को लाभ, सुविधाएँ, रियायतें, विशेषाधिकार और विशेष अधिकार प्रदान करता है जिन्हें सदियों से ये सुविधाएँ नहीं दी गई हैं। यदि उन उपेक्षित प्रतिभाओं को विकसित करने हेतु अवसर प्रदान नहीं किए जाते हैं तो भारतीय समाज में सामाजिक असंतुलन बना रहेगा।

हम देखते हैं सामाजिक न्याय व्यक्तिगत स्वतंत्रता, स्वतंत्रता और अधिकारों के संदर्भ में दर्शन किया गया है, जो प्राचीन और मध्यकालीन समाजों में काफी हद तक गौण थे। सामाजिक न्याय की आधुनिक अवधारणा न्याय के नैतिक और नीतिपरक सिद्धांत पर समान रूप से आधारित है और साथ ही साथ यह मानव अधिकारों के विचार और समानता के सिद्धांत पर भी आधारित है। सामाजिक न्याय के सिद्धांत न्याय के विचार पर आधारित हैं और सामाजिक न्याय अधिक व्यापक तथा सूक्ष्म है।

निष्पक्षता के रूप में सामाजिक न्याय प्राकृतिक अधिकार सिद्धांत के लक्षण हैं। यह न केवल प्राकृतिक गुणों पर मौलिक अधिकारों को आधार प्रदान करता है और उनके आधार को सामाजिक मानदंडों से अलग करता है, अपितु यह समान न्याय के सिद्धांतों के आधार पर व्यक्तियों को अधिकार प्रदान करता है और इन सिद्धांतों में एक विशेष बल होता है जिसके खिलाफ अन्य मूल्य सामान्य रूप से प्रबल नहीं हो सकते।

1. भारतीय परिप्रेक्ष्य और सामाजिक न्याय की अवधारणा-

भारतीय सामाजिक न्याय की संकल्पना का जन्म सामाजिक धार्मिक अन्याय की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से होता हुआ दिखाई देता है। सामाजिक न्याय का जन्म उसी दिन हो गया था जिस दिन भारतीय ऋगवैदिक समाज की वर्ण व्यवस्था के धार्मिक व ईश्वरीय विधान के नाम पर वाह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र जैसे चार टुकड़ों में बाँटकर सामाजिक एकता को खण्डित कर दिया गया। वास्तव में वर्ण व्यवस्था को सामाजिक अन्याय पर आधारित वर्ण-संरक्षण कहना अधिक संगत क्योंकि आज की आरक्षण व्यवस्था में दलितों को तो खुद आरक्षण दिया जाता है। ''जबकि वर्णारक्षण में विकसित शक्तिशाली वाहाण और क्षत्रियों के लिए समस्त सरकारी सुविधाओं का आरक्षण था। जिसमें वैश्य और शूद्रों (आज की पिछड़ी तथा अनुसूचित जन जाति) को शिक्षा शासन सम्पत्ति इत्यादि के मानवीय अधिकारों से भी वंचित रखा गया था। शूद्र को तो पशु से भी निकृष्ट माना गया था। वर्णारक्षण को सामाजिक अन्याय की जननी कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।'' [1]

न्याय की तुलना में सामाजिक न्याय की अवधारणा व्यापक है। ''सामाजिक'' शब्द समाज के साथ जुड़ा हुआ है। इसका व्यापक दायरा है, जिसमें सामाजिक मुद्दे, समस्याएँ और सुधार शामिल हैं जिसके चलते इसमें सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन शामिल हैं। इसमें समाज के दमित और वंचित वर्गों की उन्नति हेतु किए गए प्रयास शामिल हैं। कानून के माध्यम से इस प्रकार समाज में सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन लाए जा सकते हैं। सामाजिक न्याय का उद्देश्य राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक लोकतंत्र का निर्माण करना तथा वर्ग और जाति के भेदभाव को समाप्त करना है। यह लोकतंत्र द्वारा प्रदत्त व्यक्तिगत स्वतंत्रता के साथ समाजवाद के सिद्धांतों को जोड़ता है। इसलिए ''सामाजिक'' शब्द का अर्थ व्यापक है, समाज से जुड़ा हुआ है और इसमें यह बात भी शामिल है कि समाज को कैसे व्यवस्थित किया जाना चाहिए? इसके मूल्यों और संरचनाओं को कैसा होना चाहिए?' [2]

'न्याय एक कला है जिससे मित्रों को अच्छाई और दुश्मनों को बुराई मिलती है।' ग्लौकोन का तर्क है कि न्याय 'कमजोर का फायदे' में है। प्राचीन ग्रीस के कुतर्की थ्रेसिमाचस न्याय को ताकतवरों के फायदे के रूप में अर्थात् दूसरे शब्दों में जिसकी लाठी उसकी भैंस के रूप में देखते हैं। प्लेटो के अनुसार ''न्याय के रूप में बाहरी और कृत्रिमपन था। प्लेटो हेतु न्याय प्राथमिक नैतिक मूल्य है और आंतरिक रूप से दूसरे आवश्यक और नैतिक गुणों के साथ जुड़ा हुआ है।'' [3]

सामाजिक न्याय की अवधारणा बहुआयामी है और इसे कानून, दर्शन और राजनीति विज्ञान के विद्वानों द्वारा भिन्न.भिन्न तरीके से देखा गया है। सामाजिक न्याय शब्द बहुत व्यापक है और यह क्या है और क्या नहीं है के बीच संतुलन कायम करने का चक्र है। सामाजिक न्याय का तात्पर्य सभी नागरिकों को सामाजिक, भौतिक और राजनीतिक संसाधनों का न्यायसंगत वितरण है। इसमें सभी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक असमानताओं और भेदभाव को दूर करने का प्रयास किया जाता है और इसके तहत सामाजिक मामलों और आर्थिक गतिविधियों में सभी पुरुषों और महिलाओं को समान अवसर प्रदान किए जाते हैं।

सामाजिक न्याय का विषय वर्तमान में काफी महत्वपूर्ण हो गया है। मनुष्य अन्य प्राणियों की तरह समानता एवं न्याय के व्यवहार की अपेक्षा रखता है। मानव-मानव में भेदभावपूर्ण रवैया अपनाना यह तो मनुष्य की स्वयं की उपज है। जिस समाज में समानता एवं न्याय का व्यवहार किया जाता है। वहाँ राज्य की एकता एवं अखण्डता पर कभी आँच नहीं आती है। वे राष्ट्र की अखण्डता एवं एकता को कायम रखते हुए सामाजिक समरसता के वातावरण में स्वतंत्रता का उपयोग हो तो 'सामाजिक न्याय' आवश्यक हो जाता है।

आज सामाजिक एवं मानसिक जागरूकता प्राचीन काल से कहीं अधिक है। आज शिक्षा, नगरीकरण, उद्योगीकरण एवं संचार साधनों द्वारा जागरूकता, सोच एवं आकांक्षाओं का नये स्तर से निर्माण हो रहा है। ''वैयक्तिक स्वतंत्रता, समानता एवं मानवीय अधिकारों की घोषणा तथा राष्ट्र के संविधान से लेकर विश्व-संगठन जैसी संस्थाओं द्वारा इनका प्रचार-प्रसार एवं समर्थन तथा इन्हें उपलब्ध कराने एवं इनकी रक्षा करने के प्रयासों ने दलित, वंचित, शोषित एवं पिछड़े वर्ग को अपने अधिकारों के लिए आवाज उठाने का उत्साह एवं नवीन शक्ति प्रदान की है।'' [4]

© 2025 रविन्द्र कुमार रीतौरिया. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND). https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

2. सामाजिक न्याय का वास्तविक स्वरूप

सामाजिक न्याय पर प्रकाश डालने से पूर्व न्याय को समझना अति आवश्यक है। न्याय की अवधारणा शाश्वत और सर्वव्यापी है। मानव सर्वोच्च स्थान है। इसका संबंध जीवन के हर पहलू से है। एक उन्नतशील सभ्यता का आवश्यक अंग होता है न्याय एक परिवर्तनशील सभ्यता के रूप में न्याय बहुत ही महत्वपूर्ण हो जाता है। न्याय सभ्य समाज के लिए आवश्यक होता है, क्योकि अगर न्याय विज्ञान न हो तो राज्य में व्यक्ति चाहे किसी भी स्तर का हो वह अमीर हो या गरीब हो, चाहे वह किसी भी धर्म को मानने वाला क्यों न हो, गाँव का निवासी है या शहर का शिक्षित हो अथवा अशिक्षित, सबको न्याय दिलाने का प्रावधान होना चाहिए। साथ ही साथ इसका कड़ाई के साथ पालन करने एवं करवाने की भी व्यवस्था होनी चाहिए। वास्तव में सामाजिक न्याय सनातनधर्मी वर्णारक्षण, भाग्य, कर्मफल, आत्मा, परमात्मा स्वर्ग-नर्क, पाप-पुण्य, धर्म-अर्धम जैसे सिद्धान्तों की पृष्ठभूमि में अन्याय मूलक अव्यवस्थाओं और विकृतियों के समाधान की अपेक्षा रखता है।

धार्मिकों ने अन्याय की जननी वर्ण व्यवस्था को ईश्वरीय विधान बनाकर प्रस्तुत किया। उसे भाग्य और कर्मफल के रूप में प्रस्तुत किया। स्वयं के प्रयत्नों से श्रेष्ठ धनुर्धर बनने वाले भील पुत्र एकलव्य का अंगूठा कटवा लेने वाले द्रोण को आदर्श आचार्य बना दिया गया तो अपनी जाति का न होने पर महारथी कर्ण की विद्या छीन लेने वाले जातिवादी शिक्षक मातृहन्ता परशुराम को दस अवतारों में स्थान प्राप्त हो गया। देश व राष्ट्र को जुए में हार जाने वाले युधिष्ठिर को धर्मराज बना दिया गया तो बिना रक्तपात के अपने राज्य की सीमाओं में विस्तार करने वाले सुयोधन को दुर्योधन (दुष्ट प्रवृत्ति) का बना दिया गया। कृषि जैसे पवित्र कर्म को अधर्म और पापकर्म कहकर प्रस्तुत किया गया।

वेदान्त दर्शन ने तो आत्मा-परमात्मा, स्वर्ग नर्क, माया-मोक्ष, भाग्य, पुर्नजन्म, कर्मफल इत्यादि की काल्पनिकता पैदाकर वास्तविक जगत को ही नकार दिया। उसके अनुसार सब ईश्वर का खेल है। मनुष्य कुछ नहीं कर सकता। इससे समाज में अन्याय और अत्याचार की संकल्पना ही मर गयी आश्चर्य तो इस बात का होता है कि आज जिसे अधर्म, अन्याय, अत्याचार, पाप, असत्य कहा जाता है। ''प्राचीन काल में सनातन धर्म के अन्तर्गत उन्हें ही धर्म न्याय, आचार, पुण्य और सत्य कहा जाता था। यही कारण था कि अन्याय, अधर्म आदि न्याय और धर्म के रूप में प्रतिस्थापित होते चले गए। समय के साथ इसी अधर्म, अन्याय के गर्भ से धर्म व सामाजिक न्याय, जाति भेद रंग भेद, छुआछूत, धर्म भेद इत्यादि के समाप्ति की अपेक्षा रखता है सामाजिक असमानता, शोषण की समाप्ति का संकल्प सामाजिक न्याय का सार तत्व है सामाजिक न्याय का आधार समाज में आर्थिक, शैक्षिक, राजनीतिक, धार्मिक वैधानिक तथा सामाजिक समानता लाना है। वास्तव में मानववादी मूल्यों की प्रस्थापना ही इसका मुख्य लक्ष्य है।'' [5]

सामजिक न्याय की धारणा मूलरूप से नवजागरण काल की इस मान्यता पर आधारित है कि मानव स्वतंत्र पैदा हुआ है। विभिन्न प्रकार की सामाजिक दासता, दबाव प्राकृतिक नहीं है। यह व्यवस्था के नाम पर कमजोर वर्ग पर बलात् एवं चालाकी पूर्वक थोपी गयी है। समाज के इस बहुसंख्यक कमजोर वंचित, शोषित दलित वर्गों की मुक्ति ही सामाजिक न्याय है।

सामाजिक न्याय का वास्तविक स्वरूप अन्याय का प्रतिफल है, यह सभी के लिए स्थिति और अवसर की समानता सुनिश्चित करना चाहता है। आम तौर पर इसे 'कमजोर, गरीब, वृद्ध, निराश्रित, बच्चों, महिलाओं और समाज में अन्य विशेषाधिकार प्राप्त लोंगों का अधिकार' के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। ''स्वतंत्रता और अवसर, आय और धन, और आत्म सम्मान का आधार बराबर वितरित किया जाता है जब तक कि इनमें से किसी भी या सभी वस्तुओं का असमान वितरण कम से कम इष्ट का लाभ नहीं होता है।''[6]

''न्यायविद् रोजको पाउंड कानूनी रूप से संरक्षित तीन हितों के बारे में वर्गीकरण करते हैंः सार्वजनिक हित, सामाजिक हित, निजी हित।'' [7] भारत के सर्वोच्च न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश न्यायमूर्ति वी.आर. कृष्णा अय्यर कहते हैं कि ''सामाजिक न्याय नहीं है, परंतु विवेक है, न कि ऐसे दस्तावेजों से मौखिक उधार लेना, बल्कि सर्वोच्च कानून की सामाजिक शक्ति प्राप्त करना है। निश्चय ही वर्णारक्षण के धार्मिक विधान की अन्याय मूलक जागरूकता के कारण ही 'आरक्षण' सामाजिक न्याय जैसे शब्दों का जन्म हुआ और दलित शक्ति दलित राजनीति जैसे संकल्पनाएं अस्तित्व में आयी। ''सामाजिक न्याय लोक उन्मुख होता है, कानूनी न्याय कैनलाइज्ड होता है जिसे कानून द्वारा नियंत्रित और प्रदान किया जाता है।'' [8]

3. सामाजिक न्याय और अम्बेडकरवादी दृष्टिकोण

माहात्मा गाँधी, पं. जवाहर लाल नेहरू, ज्योतिबा फुले, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद एवं वी.आर. अंबेडकर ने भारत में जिस सामाजिक न्याय की बात कही थी उसका परिवेश ही कुछ और था। उस समय सामाजिक न्याय को मुद्दा इसलिए बनाया गया क्योंकि अनेक निम्न जातियाँ सामाजिक भेद भाव का शिकार थी। उनका मंदिरों में प्रवेश वर्जित था, सार्वजनिक कुओं से पानी भरने नहीं दिया जाता था, शादी विवाह में दुल्हे को घोड़े पर चढ़ने नहीं दिया जाता था। सभी निम्न जातियाँ छुआ-छूत की समस्या से ग्रसित थी ये सामाजिक बुराईयाँ सर्वत्र विद्यमान थीं। जिनको दूर करना इन महापुरूषों का एकमात्र लक्ष्य था। इस सामाजिक पिछड़ेपन का कारण आर्थिक था। अतः इसके लिए यह महत्वपूर्ण समझा गया कि उन्हें समाज में बराबर का दर्जा दिया जाये, ताकि उन्हें न्याय मिले। सामाजिक न्याय के लिए जो आधार तय किये गये वे निरक्षरता की समाप्ति, बन्धुआ मजदूरी की समाप्ति, पूंजी के केन्द्रीयकरण पर रोक, शोषण की समाप्ति तथा आरक्षण द्वारा सेवाओं में स्थान इत्यादि थे।

सामाजिक न्याय की अवधारणा विशेष रूप से नवजागरण की इस सोच पर आधारित है कि मनुष्य स्वतंत्र पैदा हुआ है विविध प्रकार की सामाजिक दासता कोई प्राकृतिक देन नहीं है बल्कि व्यवस्था के नाम पर समाज के अल्पसंख्यक प्रभावशाली लोगों द्वारा बहुसंख्यक वर्ग जैसे कमजोर और निम्न वर्ग पर जबरन थोपी गयी है इसी अनुसार समाज के बहुसंख्यक वंचित शोषित दलित एवं दलित लोगों की मुक्ति ही सामाजिक न्याय है। सामाजिक न्याय का उद्देश्य समाज के असहाय व कमजोर तबके के लोगों की परम्परागत सामाजिक आर्थिक निर्योग्यताएँ को दूर करके उन्हें शोषण, भेदभाव एवं उत्पीड़न के परम्परागत बन्धन से आजाद करना है।

अंबेडकर के अनुसार यह कहा जा सकता है कि सामाजिक न्याय एक आदर्श या सिर्फ समाज बनाने का एक साधन है। उनके लिए समाज का अर्थ जातिहीन समाज है जो सामाजिक न्याय के सिद्धांतों और तीन घटकों के संयोजन के आधार पर हो। अंबेडकर का आदर्श समाज स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे के दो मूलभूत सिद्धांतों पर आधारित है। उनमें से पहला यह है कि व्यक्ति अपने आप में एक अंत है और समाज का उद्देश्य व्यक्ति का विकास और उसके व्यक्तित्व का विकास

© 2025 रविन्द्र कुमार रीतौरिया. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND). https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

है। ''समाज व्यक्ति से ऊपर नहीं है और अगर व्यक्ति को खुद को समाज के अधीन रहना पड़ता है, तो ऐसा इसलिए है क्योंकि इस तरह की अधीनता उनके भलाई हेतु है और केवल आवश्यक सीमा तक ही ऐसा है। दूसरी बात जरूरी यह है कि समाज के सदस्यों के बीच सम्मिलित जीवन की शर्तों को स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे पर स्थापित विचारो ं के आधार पर माना जाना चाहिए।'' [9] अम्बेडकर के विचार के अनुसार एक जाति आधारित समाज किसी व्यक्ति को कोई स्थान नहीं देता है, जबकि अम्बेडकर के प्रस्तावित समाज में व्यक्ति अंतिम समाप्ति है। ''किसी जाति आधारित समाज में दूसरे वर्गों के सदस्यों के संग एक व्यक्ति का संबंध पहले ही निश्चित रहता है। परंतु अम्बेडकर द्वारा सोचे गये समाज में, संबंध स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे पर आधारित होने चाहिए।'' [10]

अंबेडकर की सामाजिक न्याय की अवधारणा के मुख्य घटक स्वतंत्रता, समानता और भाईचारा हैं। स्वतंत्रता पहला घटक है। लास्की का हवाला देते हुए अम्बेडकर ने कहा किः स्वतंत्रता की वास्तविकता हेतु इसके साथ कुछ सामाजिक स्थितियाँ होनी चाहिए। अंबेडकर हेतु ''आधुनिक समाज में सही और गलत की पहचान हेतु आदर्श या मानदंड न्याय ही है।' उनके अनुसार, 'स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे का दूसरा नाम न्याय था।' [11] सामाजिक समानता सबसे पहले होनी चाहिए। विशेषाधिकार उसके धारकों के पक्ष में सामाजिक क्रिया के संतुलन का झुकाव है। नागरिकों के सामाजिक अधिकार अधिक समान हैं, और वे अपनी स्वतंत्रता का उपयोग करने में अधिक सक्षम हैं, यदि स्वतंत्रता को उसके स्थान से हटाना है तो यह महत्त्वपूर्ण है कि समानता होनी चाहिए।

4. सामाजिक न्याय और समानता का संवैधानिक अधिकार

भारतीय संविधान में सामाजिक न्याय और समानता की अवधारणा निहित है। भारतीय संविधान के निर्माता के पास एक नया सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था का सपना था, जिसकी आत्मा सामाजिक न्याय थी। भारतीय संविधान में सामाजिक न्याय परिभाषित नहीं है। यह एक संबंधित अवधारणा है जो समय और परिस्थितियों, लोगों और उनके पिछड़ेपन, रक्त, पसीने और आँसूओं से निर्मित है। अम्बेडकर भारतीय संविधान के प्रमुख शिल्पकार थे। वे भारतीय समाज के पैटर्न, समस्याओं और विवादित हितों के बारे में पूरी तरह से अवगत थे। सामाजिक इंजीनियरिंग का एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण संविधान है। सामाजिक न्याय की अवधारणा में भारत का संविधान एक पुनर्जागरण लाता है, जब यह प्रस्तावना, मूलभूत अधिकारों, और राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों का त्रिमूर्ति का विस्तार करता है। यह ट्रिनिटी 'सामाजिक क्रांति की प्रतिबद्धताओं का मूल है।

सामाजिक न्याय हालांकि संविधान में परिभाषित नहीं है परंतु प्रस्तावना, राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांत और मूलभूत अधिकार स्पष्ट रूप से सामाजिक न्याय के दर्शन को दर्शाते हैं। सामाजिक न्याय, एक संबंधित अवधारणा समय और परिस्थितियों, लोगों, उनकी परंपराओं और आकांक्षाएं, उनके अशांति और प्रवाह, उनके पिछड़ेपन, रक्त, पसीना और आँसूओं में विकसित होती रही हैै। इस कारण ये तीनों वर्ग सामाजिक परिवर्तन और भारतीय समाज के पुनर्निर्माण हेतु महत्त्वपूर्ण हैं, जो सामाजिक न्याय का सार है। केवल सामाजिक न्याय समाज में सभी लोगों की सामाजिक सामंजस्य, सामाजिक स्थिरता और देशभक्ति की भावनाओं का नेतृत्व कर सकता है।

5. भारत में वर्ण-व्यवस्था और कार्यशीलवादी दृष्टिकोण-

भारत में वर्ण-व्यवस्था और कार्यशीलवादी दृष्टिकोण से देखा जाये तो अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों में सामाजिक अन्याय का मूल कारण हिंदू समाज में जाति व्यवस्था रही है। भारत में जातियाँ मिली हुई इकाइयाँ हैं और यह स्पष्ट विवेक के साथ उनकी साजिश है जो पूर्व जाति में खुद को बनाने हेतु मजबूर करती है। उनकी दुर्बल परिस्थितियों का तर्क बेरहम है और यह अपनी ताकत हेतु आज्ञाकारी है कि कुछ दुर्भाग्यपूर्ण समूह स्वयं को नतीजे के साथ प्रतिबंधित कर देते हैं कि अब यांत्रिक कानून द्वारा समूह लगातार बहुलता के साथ जातियों में परिवर्तित हो रहे हैं। भारत में देखा जाये तो अस्पृश्यता की जड़ जाति व्यवस्था है, जाति व्यवस्था की जड़ धर्म था, धर्म की जड़ वर्ण व्यव्स्था से जुड़ी हुई थी, वर्ण व्यवस्था की जड़ ब्राह्मणवाद था और ब्राह्मणवाद की जड़ राजनीतिक सत्ता में है।

भारत में कार्यशीलवादी दृटिष्कोण के परिप्रेक्ष्य में देखा जाये तो आर्थिक प्रणाली के रूप में दायित्व के बिना शोषण की अनुमति है, छुआछूत न केवल निरंतर आर्थिक शोषण की व्यवस्था है, परंतु यह अनियंत्रित आर्थिक शोषण की एक प्रणाली भी है। इसका कारण यह है कि इसमें निंदा करने के लिए कोई स्वतंत्र जनमत नहीं है और प्रशासन को नियंत्रित करने हेतु कोई निष्पक्ष यंत्रणा नहीं है, पुलिस या न्यायपालिका की कोई जाँच साधारतण बातों के लिए नहीं की जा सकती है कि वे सभी हिंदू हैं और शोषक के पक्ष में हैं।

भारतीय समाज की दयनीय स्थिति को महिलाओं की निम्न स्थिति पूरी तरह से अवगत कराती है। भारतीय सामाजिक सुधारकों द्वारा महिला और आम तौर पर हिंदू महिलाओं के उत्थान की कोशिश की गयी है। अम्बेडकर के अनुसार महिलाओं को परिवार के भारों को सहन करने हेतु केवल उपकरण माना जाता था और वे बच्चों को जन्म देने और पत्नी या माता के कत्र्तव्यों को पूरा करने हेतु ही सीमित थीं। श्रम की श्रेणी उनके पक्ष में नहीं है, परिणामस्वरूप भारतीय महिलाओं ने अपनी पहचान खो दी है। उन्हें लिंग के आधार पर भेदभाव का सामना करना पड़ता है और इस वजह से, समान अवसर उनके लिए एक सपना ही है। उन्हें गरीबी, निरक्षरता, स्वास्थ्य की कमी, असमानता और निर्बलता को सहना पड़ता है। परंपरागत व्यवहार उन्हें शारीरिक रूप से, बौद्धिक रूप से और सामाजिक रूप से पुरुषों से नीच मानते हैं और उन्हें पुरुष शोषण और श्रम के अनुचित विभाजन के अधीन किया जाता है। ''ऐसा समाज जहाँ आधी आबादी वाले महिलाओं का निम्न दर्जा है, मूलतः इस तथ्य के कारण हुआ कि स्त्रियों का भौतिक और सामाजिक संसाधनों पर कोई नियंत्रण नहीं है। यह परिवार के निर्णय लेने की प्रक्रिया में महिलाओं की भागीदारी के अवसरों की कमी के कारण विकसित हुआ है।'' [12]

भारत में वर्ण-व्यवस्था और कार्यशीलवादी दृष्टिकोण से देखा जाये तो भारतीय संविधान में सामाजिक न्याय की अवधारणा निहित है। भारतीय संविधान के निर्माता के पास एक नया सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था का सपना था, जिसकी आत्मा सामाजिक न्याय थी। भारतीय समाज के पैटर्न और समस्याओं और विवादित हितों के बारे में पूरी तरह से सामाजिक इंजीनियरिंग का एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण संविधान है।

© 2025 रविन्द्र कुमार रीतौरिया. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND). https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

निष्कर्ष

सामाजिक न्याय का उद्देश्य लिंग, वर्ण, जाति, शक्ति, स्थिति और धन के आधार पर असमानताओं को दूर करना है। सामाजिक न्याय, समानता और समावेशिता हेतु अपने जीवन में अस्पृश्यों और महिलाओं ने भेदभाव के खिलाफ संघर्ष किया है। संविधान स्पष्ट रूप से प्रस्तावना, मौलिक अधिकारों और निर्देशक सिद्धांतों में एक समानतावादी सामाजिक आदेश की स्थापना पर जोर देती है। संविधान के ये तीन खंड न्याय के मानवीय मूल्यों पर आधारित हैं: सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक, स्थिति और अवसर की समानता, और भाईचारा, मानव गरिमा का आश्वासन। इस प्रकार शोध का मुख्य उद्देश्य महिलाओं और कमजोर वर्गों का उत्थान और उन्हें समाज की मुख्यधारा में लाना है।

संदर्भ सूची

1. निर्मोही एसएल. सामाजिक न्याय दलित और सर्कस के शेर की राजनीति का उदय। उद्धृत: मिश्रा वी. सामाजिक न्याय। वाराणसी: मिश्रा ट्रेडिंग कम्पनी; पृ. 71।
2. कटारिया के. Relevance of Ambedkar's Ideology. नई दिल्ली: रावत प्रकाशन; 2015. पृ. 204।
3. Forsyth & Keens-Soper (eds.). A Guide to the Political Classics. Oxford: Oxford University Press; 1988. पृ. 25।
4. गुप्ता ओपी, सिंह वी. सामाजिक न्याय उद्देश्य एवं परिणाम। वाराणसी: मिश्रा ट्रेडिंग कम्पनी; 2001. पृ. 11।
5. पाण्डेय एसएन. सामाजिक न्याय एवं दलित वर्ग। उद्धृत: मिश्रा वी. सामाजिक न्याय। वाराणसी: मिश्रा ट्रेडिंग कम्पनी; 2001. पृ. 71।
6. Friedmann W. Legal Theory. 5th ed. दिल्ली: Universal Law Publishing; 2002. पृ. 336।
7. Rawls J. A Theory of Justice. दिल्ली: Universal Law Publishing; 2002. पृ. 336।
8. Iyer KR. *B.R. Ambedkar Centenary: Social Justice and the Unfinished Task*. दिल्ली: B.R. Publishing; 1991. पृ. 141।
9. Ambedkar BR. *Writings and Speeches*, Vol. 3. मुंबई: Government of Maharashtra; 1987. पृ. 95।
10. Shabbir M (ed.). Ambedkar on Law, Constitution and Social Justice. जयपुर: Rawat Publications; 2005. पृ. 159।
11. Ambedkar BR. Writings and Speeches, Vol. 3. 1987. पृ. 25।
12. Purohit BR, Joshi S. 2003. पृ. 209।

Creative Commons (CC) License

This article is an open-access article distributed under the terms and conditions of the Creative Commons Attribution (CC BY 4.0) license. This license permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original author and source are credited.

About the Author

रविन्द्र कुमार रीतौरिया एक शोध छात्र हैं जो राजनीति विज्ञान में जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर (मध्य प्रदेश) से अध्ययनरत हैं। उनका शोध क्षेत्र राजनीतिक सिद्धांत, भारतीय राजनीति एवं समकालीन शासन व्यवस्था पर केंद्रित है। वे सामाजिक-राजनीतिक मुद्दों के विश्लेषण में विशेष रुचि रखते हैं और अकादमिक शोध कार्यों में सक्रिय रूप से संलग्न हैं।

© 2025 रविन्द्र कुमार रीतौरिया. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND). https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/